Chapter · 3

अध्याय : 3

व्यंग्योद्भावक स्थितियाँ

अध्याय - 3

व्यंग्योद्भावक स्थितियाँ

पूर्व विवेचन में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि आलोच्य काल-खंड में पहले के किसी भी काल-खंड की अपेक्षा व्यंग्योन्मुखी प्रवृत्तियाँ अधिक लक्षित होती हैं। सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, धार्मिक स्थितियाँ कुछ ऐसी बनती बिगड़ती गयी हैं कि समूचा परिवेश ही व्यंग्योन्मुख हो गया है। मनुष्य और परिणामतः चरित्र अधिक जटिल हो गया है। आज किसी भी व्यक्ति के सन्दर्भ में स्पष्टतया कुछ भी नहीं कहा जा सकता। "एक टूटा हुआ आदमी" का धर्मनाथ उचित ही सोचता है। "इस युग में किसी आदमी के बारे में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। आज आदमी का चरित्र और व्यवहार समझना आसान नहीं है। आदमी ही इस युग की सबसे पेचीदी पहेली है।"[1]

आजका परिवेश तीखी प्रतिक्रिया से इतना आक्रान्त है कि सामान्य-सी लगनेवाली बात भी इस विशिष्ट संदर्भ में व्यंग्य का कारण बन सकती है "वह एक प्रामाणिक अफ़सर है।" यह सीधा-सादा वाक्य भी अब विधान

वाक्य नहीं रह गया । वाक्यांत में आया हुआ आश्चर्य-चिह्न स्थितिकी व्यंग्यात्मकता को संकेतित करता है ।

यहाँ तक कि हमारे नेताओं के पूर्व कथन भी एक व्यंग्य स्थिति का निर्माण कर रहे हैं । उदाहरणार्थ लोकतंत्र विषयक नेहरूजी के यह विचार आज के इस परिवर्तित परिवेश में महज़ एक व्यंग्य बन कर रह गये हैं --

"Democrancy as I understand it, means something mere than a certain form of government and a body of egaliatrian laws. It is essentially a scheme of values and moral standards in life. Whether you are democratic or not depends on how you act and think as an individual or as a group democracy demands discipline tolerance and mutual regard. Freedom demands respect for the freedom of others. In a democracy changes are made by mutual discustion and persuation and not by violent means. Democracy if it means anything means equality not merly the equality of possessing a vote, but economic and social equality."[2]

और इधर स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद हम देख रहे हैं वैद्यजी डंडे के जोर पर चुनाव करा लेते हैं और कोई उनका कुछ नहीं बिगाड़ नहीं सकता । छोटू पहलवान और बदरी जैसे लोग छूटे साँड से डोल रहे हैं ।[3] पंचानन जैसा महाचोर और छटा हुआ बदमाश बाबा मस्तानंद बनकर चुनाव प्रचार में जनमत पर छा जाता है और विष्णुपद जैसे शिक्षित

और प्रामाणिक सांसद को अनेक शहरों में अदालत की खाक छाननी पड़ती है ।[4] एक समय के नेहरू के विश्वसनीय ऐसे श्री शिवलोचन शर्मा जैसे चुस्त कॉंग्रेसी हार कर अंधकार में विलुप्त हो जाते हैं और उनके स्थान पर रामकुमार गाबड़िया जैसे व्यापारी के साथ पैसों के लिए सोनेवाली रूपा आण्टी जैसी औरतें चुन ली जाती हैं ।[5] ये सब उदाहरण उपन्यासों के हैं, किन्तु उनमें देश का ही तो चरित्र प्रतिबिंबित हुआ है ।

इस स्वातंत्र्योत्तर मोह भंग की छबि को स्व॰ रामधारीसिंह दिनकर की "अटका कहाँ स्वराज" और स्व॰ माखनलाल चतुर्वेदी का "उनकी यादों के तरू – तृण – पल्लवनों लो अब तो हम छोड़ चलें, कसमें रावी के तट खायी, जमुना के तट पर तोड़ चलें ।" जैसी पंक्तियों में देखा जा सकता है । मूलत: हमारे सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, शैक्षिक प्रभृति क्षेत्रों में व्याप्त विषमता, विसंवादिता, विद्रूपता और विकृतियाँ ही इस व्यंग्योन्मुखी परिवेश को निर्मित करती हैं ।[6] इनके कारण ही मोहभंग और भ्रष्टाचार जैसी स्थितियों का निर्माण होता है जिनसे व्यंग्य की सृष्टि होती है ।

वि ष म ता

यह तो स्वत: स्पष्ट है कि विषमता ही व्यंग्य का लक्ष्य बनती है । कोई बात सीधी सादी हो, सम हो तो उसमें हास्य, आश्चर्य या व्यंग्य के लिए कोई गुंजाईश नहीं रह जाती । किसी व्यक्ति के आचार-विचार यदि परस्पर अनुरूप है -- यद्यपि आज के माहौल में यह असंभव-सा प्रतीत होता है, तो कोई भी व्यक्ति उन पर कटाक्ष नहीं कर सकता । कोई भी

[illegible] । कोई भी उन्हें व्यंग्य-बाणों से आहृत नहीं कर सकता । परन्तु विपरित स्थिति में वह व्यक्ति लोगों के आरोप-प्रत्यारोपों से घिरकर व्यंग्य को पुष्ट आधार प्रदान करेगा । इन पंक्तियों के लेखक को वह वाक्या आज भी ताजा है जब एक स्वातंत्र्य सेनानी और पुराने कोंग्रेसी नेता के षष्टी-पूर्ति समारोह का आयोजन बड़ौदा में हुआ था । उस समारोह में प्रस्तुत नेता बेचारे अपने व्याख्यान में हिन्दी के प्रचार प्रसार की बात कर रहे थे तब श्रोताओं में से कटु टिप्पणी आई थी कि आपके घर में तो अंग्रेजीयत का राज है, आप हिन्दी की बात किस मुँह से करते है तात्पर्य यह कि आचार-विचार कथनी-करनी आदर्श-यथार्थ, गरीबी-अमीरी तथा जात-पाँत आदि में स्थित विषमता ही व्यंग्य को जन्म देती है ।

"रागदरबारी" उपन्यास का समूचा व्यंग्यात्मक रूपबन्ध इसी विषमता की स्थिति पर निर्भर है । वैद्यजी प्रकटत: सौम्यता, अहिंसा, गांधीवाद लोकतंत्र, ब्रहमचर्य आदि की बातें करते हैं परन्तु समग्र उपन्यास में उनकी कार्य प्रणाली अन्य बातों की और इशारा करती है जिसका बड़ा ही व्यंग्योत्पादक वर्णन स्थान-स्थान पर उपलब्ध होता है । लोकतंत्र - विषयक उनकी अवधारणा का कैसा फन्टासीपरक चित्रण यहाँ उपलब्ध हुआ है । वैद्यजी रात के पिछले प्रहर में तन्द्रावस्था में है । देखते-देखते क्रांति की हवा कुतिया की तरह दुम हिलाती हुई सिर्फ उनके नथनों से खर्राटों के रूप में आने लगी, जाने लगी । वे सो गये । तब उन्होंने पंजातंत्र का सपना देखा । उन्होंने देखा कि प्रजातंत्र उनके तख्त

के पास जमीन पर पंजो के बल बैठा है । उसने हाथ जोड़ रखे हैं । उसकी शक्ल हलवाहो जैसी है और अंग्रेजी तो अंग्रेजी, वह शुद्ध हिन्दी भी नहीं बोल रहा है । फिर भी वह गिड़गिड़ा रहा है और वैद्यजी उनका गिड़गिड़ाना सुन रहे हैं । वैद्यजी उसे बार बार तख्त पर बैठने के लिए कहते है और समझाते हैं कि तुम गरीब हो तो क्या हुआ, हो तो हमारे रिश्तेदार ही, पर प्रजातंत्र उन्हें बार-बार हुजूर और सरकार कह कर पुकारता है । बहुत समझाने पर प्रजातंत्र उठकर उनके तख्त के कोने पर आ जाता है और जब उसे इतनी सांत्वना मिल जाती है कि वह मुँह से कोई तुक की बात निकाल सके तो वह वैद्यजी से प्रार्थना करता है कि मेरे कपड़े फट गये हैं, मैं नंगा हो रहा हूं । इस हालत में मुझे किसी के सामने निकलते हुए शर्म लगती है, इसलिए, हे वैद्यजी महाराज, मुझे एक साफ़ सुथरी धोती पहनने को दे दो । वैद्यजी बद्री पहलवान को अन्दर से एक धोती लाने के लिए कहते हैं, पर प्रजातंत्र इन्कार में सिर हिलाने लगता है । वह बताता है कि मैं आप के कालिज का प्रजातंत्र हूं और आपने यहाँ की सालाना बैठक बरसों से नहीं बुलाई है । मेनेजर का चुनाव कालिज खुलने के दिन से आज तक नहीं हुआ है । एक बार कायदे से आप चुनाव करा दें । उससे मेरे जिस्म पर एक नया कपड़ा आ जायेगा । मेरी शर्म ढँक जायेगी । यह कह कर प्रजातंत्र बैठक के बाहर चला गया और वैद्यजी की नींद दोबारा उचट गई । जागते ही उन्होंने अपनी आंतरिक क्रांति का एक ताज़ा विस्फोट लिहाफ़ के अन्दर पैताने की ओर सुना और एकदम तय किया कि देखने में चाहे कितना बांगड़ू लगे पर प्रजातंत्र

भला आदमी है और अपना आदमी है, और उसकी मदद करनी चाहिए । उसे कम से कम एक नया कपड़ा दे दिया जाय ताकि पाँच भले आदमियों में वह बैठने के लायक हो जाय ।[7]

हमारे सामाजिक राजनैतिक जीवन में व्याप्त वैचारिक विषमता का कैसा बेलाग बेलौस पर्दाफ़ाश इन पंक्तियों में हुआ है । "आज़ादी मिलने के बाद हमने अपनी बहुत-सी सांस्कृतिक परम्पराओं को फिर से खोद कर निकाला हैं । तभी हम हवाई जहाज़ से यूरोप जाते हैं, पर यात्रा का प्रोग्राम ज्योतिषी से बनवाते हैं, फारेन एक्सचेन्ज और इनकमटेक्स की दिक्कतें दूर करने के लिए बाबाओं का आर्शीवाद लेते है, स्कोच-व्हिस्की पीकर भगंदर पालते है और इलाज के लिए योगाश्रमों में जाकर साँस फुलाते हैं, पेट सिकोडते हैं । उसी तरह विलायती तालीम में पाया हुआ जनतंत्र स्वीकार करते है और उसको चलाने के लिए अपनी परंपरागत गुट बन्दी का सहारा लेते हैं ।"[8]

वस्तुत: वैद्यजी हमारे शासकीय नेताओं के प्रतीक रूप हैं और पूरा भारत वर्ष ही शिवपाल गंज हैं ।[9]

यह वैचारिक विषमता रंगनाथ में भी लक्षित होती है । एक तरफ वह बुद्धिवादी होने का दावा करता है, दूसरी तरफ वीर्य बढ़ाने के लिए भाँग पीता है; अंधश्रद्धावश कांसे में गाँठे लगाता है ताकि बजरंगबली प्रसन्न हो हरेक अन्याय को देखते हुए जो केवल सोचता - विचारता रह जाता है । जो ऐसा मिट्टी का शेर है कि अकेले में गुर्राता तो बहुत है पर मौका पड़ने पर दुम दबाकर भाग जाता है । क्या कुछ ऐसा ही हमारे बुद्धिजीवी वर्ग का चरित्र भी नहीं है

अनेक लोकतंत्रीय नारों के बावजूद जातिगत विषमता भी वैसे ही बरकरार है । आज भी ब्राहमण ठाकुर और हरिजन-चमार आदि को भेद की दृष्टि से ही देखा जाता है । समता की बातें केवल "वोट" तक सीमित रह गयी है । लोकतंत्र की बहक में "आधा गाँव" के सुखरमवा चमार का बेटा परसुरमवा एम.एल.ए. तो हो जाता है परन्तु स्थापित हितों के टकराव में आते ही झूठे बलात्कार के किस्से में फँसवा लिया जाता है । बिहार जैसे राज्य में तो अब जाति के आधार पर अलग-अलग सेनाएं बन रही है ।

"जल टूटता हुआ" की हरिजन कन्या लवंगी का पुण्य-प्रकोप उचित ही ठहरता है जब वह कहती हैं -- "चमार का खून खून नहीं है बामन का खून ही खून हैं हमारी कोई इज्जत नहीं होती क्या बामनों की ही इज्जत होती है .... जब चमरौटी की तमाम लड़कियों पर ये बाबा लोग हाथ साफ करते हैं तो कोई परलय नहीं आती और कोई चमार बामन की लड़की को छू ले तो परलय आ जाती है । ... हरिजनों के नेता मैं तुमसे फरियाद करती हूँ कि वोट लेनेवाले नेताओं से जाकर कहो कि हमारा खून खून नहीं है, हमारी इज्जत इज्जत नहीं है, तो हमारा वोट ही वोट क्यों हैं ।"[10]

जातिगत विषमता की व्यंजना मन्नू भण्डारी कृत "महाभोज" में और भी प्रखर व तिक्त हो गई है जहाँ सहायबाबू के रूपमें वर्तमान नेताओं का कांइयांपन और दोगलापन बहुत करीने से व्यंजित हुआ है । सहायबाबू भी वैद्यजी की भाँति ऊपर-ऊपर से सौम्य, शांत, सरल है परन्तु इन मुखौटों

के पिछे का उसका रूप किसी बनैले पशु से कम भयंकर नहीं है ।

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित कृत "मुरदाघर" उपन्यास आर्थिक विषमता की घनीभूत व्यंजना है । नियोन लाइट से जगमग सफेद इमारतोंवाली सफेदपाश बस्ती के कोन्ट्रास्ट में बम्बई की एक गंदी, घिनौनी सडांध से भरी हुई झोंपडपट्टी की यथार्थ तस्वीर हमारी व्यवस्था का मानो मखौल उड़ाती हैं । इसमें एक-एक दो-दो, अठन्नी या चाय - ठर्रा के एक-एक कप में शरीर का सौदा करनेवाली वेश्याएं हैं : मिकदार गंदगी पर भिनभिनाती मक्खियों जैसे गन्या, राजू, गोपू जैसे होटल के उच्छिष्ट कचरे में रोटी, पाउं या हड्डी को ढूंढनेवाले बच्चे हैं; शराबी, कबाबी, मवाली, दारू-मटका के अड्डे वाले हैं; इन सब से अटी-पटी यह बस्ती हमारी पंचवर्षीय योजनाओं और महानगरीय जीवन के लकदक वैभव पर एक प्रश्नचिह्न बन कर उभरती है ।

वि सं वा दि ता

विषमताओं से विसंवादिता का जन्म होता है । विसंवादिता का सामान्य अर्थ है ताल-मेल का अभाव, बेसूरापन । सामान्यत भी यह देखा जाता है कि प्रत्येक सुचारु रूप से संपन्न कार्य प्रणाली में एक निश्चित कार्य कारण सम्बन्ध होता है । उसकी दृष्टि और लक्ष्य में एक साम्य होता है । जहाँ दृष्टि कुछ हो कार्य कुछ और हो रहा हो, गन्तव्य कुछ, दिशाएं कुछ हो वहाँ पर विसंवादिता का साम्राज्य स्थापित होता है, और ऐसी विसंवादिता व्यंग्य को जन्म देती है ।

साम्प्रत जीवन का कोई भी क्षेत्र उससे अछूता नहीं है । राजनीति तो उसमें आकण्ठ डूबी है किन्तु साहित्य कला जैसे क्षेत्र जिनका मूल लक्ष्य ही विसंवादिता का दूरकर संवादिता स्थापित करना है, उससे बुरी तरह से ग्रस्त है । हिमांशु श्रीवास्तव "कृत कथा सूर्य की नयी यात्रा" में हमारे साम्प्रत साहित्यिक जीवन में व्याप्त अनेक विसंवादिताओं को उद्घाटित किया है । साहित्यिक गुटबन्दी उठा-पटक आदि का अच्छा दिग्दर्शन लेखक ने वहाँ करवाया है । शिक्षा संस्थाओं और विद्वानों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं वैचारिक दिवालियापन को भी लेखक ने व्यंग्यात्मक ढंग से रेखांकित किया है ।

प्रथम पृष्ट से लेकर अंतिम पृष्ठ तक समूचा "राग दरबारी" उपन्यास ऐसी अनेक विसंवादिताओं और विसंगतियों से अटा पड़ा है । यह हमारे साम्प्रन्त जीवन का वह दस्तावेज है जो पिछले कई वर्षों से तथा कथित प्रगति और विकास के अनेक नारों के बावजूद निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के आघातों के सामने घिस्ट रही हैं ।[11]

उसके छंगामल इण्टरमीडिएट कालिज में अध्यापन को साईड बिजनस समझनेवाले मास्टर मोतीराम हैं जो आपात धनत्व के सिध्धान्त को अपनी आटा चक्की के माध्यम से सिखाते है । और उनका ध्यान पढ़ाने में कम अपने खेती व्यवसाय व आटाचक्की में अधिक फँसा रहता है । उन्हें प्रिंसिपल भी कुछ नहीं कह सकते क्यों कि वे अपने लबके के संवाददाता एवं वैद्यजी के खास कृपा पात्रों में से एक है । मास्टर खन्ना और मालवीय जैसे अध्यापक दूसरों की तुलना में कुछ अधिक प्रबुद्ध है किन्तु उपर्युक्त

विसंगतियों के कारण राजनीति के दल दल में ही अधिक उलझे रहते है और अंततोगत्वा गुण्डागिर्दी के बल पर उन्हें वहाँ से निकाला भी जाता है । प्रिंसिपल मास्टर खन्ना वाली पोस्ट रंगनाथ को आफर करते है । रंगनाथ के मना करने पर प्रिंसिपल साब की जो टिप्पणी है वह भीतर तक हमें कहीं बेध जाती है, "इससे कहाँ तक बचोगे बाबू रंगनाथ जहाँ जाओगे, तुम्हें किसी खन्ना की ही जगह मिलेगी ।"[12]

इन्हीं प्रिंसिपल महोदय ने यूनिवर्सिटी लेक्चरर के जो हालात बयान किये हैं, भले ही वे छी: छी: अंगूर खट्टे हैं वाली स्थिति की उपज है, किन्तु यथास्थिति से अधिक दूर नहीं है ।

"और सच पूछो तो मुझे यूनिवर्सिटी में लेक्चरर न होने का भी कोई गम नहीं है । वहाँ तो और भी नरक है । पूरा कुम्भीपाक । दिन रात चापलूसी ।xx जिसे देखो कोई-न-कोई रिसर्च प्रोजेक्ट हथियाए है । कहते है रिसर्च कर रहे हैं, पर रिसर्च भी क्या, जिसका खाते है उसीका गाते हैं । और कहलाते क्या हैं देखो, देखो, कौनसा शब्द है -- हाँ - हाँ, याद आया कहलाते हैं बुद्धिजीवी । तो हालत यह है कि है तो बुद्धिजीवी पर विलायत का एक चक्कर लगाने के लिए यह साबित करना पड़ जाय कि हम अपने बाप की औलाद नहीं है तो साबित कर देंगे । चौराहे पर दस जूते मार लो पर एक बार अमरीका भेज दो । ये है - बुद्धिजीवी ।"[13]

बदी उज्जमाँ कृत "एक चूहे की मौत" फन्तासी के माध्यम से एक ऐसी समाज व्यवस्था का चित्रण करता है जो पूरी तरह मानव विरोधी

है और जिसमें मानवीय गरिमा जथा मानव-अस्तित्व दोनों मूल्यहीन हो चूके हैं । आधुनिक शिक्षित व्यक्ति की सब से बड़ी त्रासदी यह है कि उसे जीविकोपार्जन के लिए अपनी आत्मा को अस्वीकार्य ऐसा काम करना पड़ता है । साहित्य में एम•ए• या विज्ञान में एम•एस•सी• करनेवाले युवक को किसी बेन्क या दफ्तर में बिठा दिया जाता है जहाँ उसे अपनी रुचि व व्यक्तित्व से नितान्त भिन्न कार्य करना पड़ता है । यह चूहा मारना नहीं तो और क्या है ? व्यवस्था के इस ढाँचे में ढलकर सभी एक-से हो जाते है बिना चेहरे के, व्यक्तित्वहीन । अत: यहाँ पात्रों के नाम भी ग त प आदि है ।

इसमें हमारी शिक्षा पद्धति पर भी करारा व्यंग्य है जो निरन्तर एक ब्यूरो-क्रेटिक समाज की रचना किये जा रहा है । वस्तुत: इस का जन्म अंग्रेजों की एक आवश्यकता-पूर्ति के रूप में हुआ था । पंडित जवाहर लाल नेहरु इस सम्बन्ध में लिखते हैं --

"The old village school died away. Then slowly and grundingly a little start was made. This start in education was also brought about by their own needs. The British people filled all the high offices, but obivously they could not fill the smaller offices and the clerkships. Clerks were wanted, and it was to produce clerks that schools and colleages were first started by the British. Ever since then this has been the main purpose of education in India; and most of its products are only capable of being clerks."[10]

परन्तु यह भी समय का उतना ही बड़ा व्यंग्य है कि यह ब्यूरो-क्रेटिक कल्चर स्वातंत्र्योत्तर काल और विशेषत: पंडित नेहरू के लम्बे शासनकाल में भी उसी तरह पनपता रहा । प्रस्तुत उपन्यास में इसी बाबूगीरी की दमघोंटू मोनोटोनी का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है ।

यहाँ डॉ॰ पारुकान्त देसाई के इन विचारों से सहमत हुआ जा सकता है कि "व्यवस्था-तंत्र समाज-जीवन में एक साधन, अत: साधक रूपमें आना चाहिए, परन्तु उसके स्वयं साध्य हो जाने से वह बाधक सिद्ध हो रहा है और समाज-जीवन को बुरी तरह से आक्रान्त किए हुए है ।"[15]

पूर्वोक्त कथनानुसार उपन्यास में फन्टासी का अच्छा निर्वाह हुआ है । चूहा फाईल का प्रतीक है । उससे जुड़ा हुआ कार्य "चूहे मारना" है और उसका कर्ता क्लर्क चूहेमार है । यहाँ एक दूसरे के मातहत में चूहे मारते चूहेमार मजबूर है इस अभिशप्त, भयभीत चूहेमारी के लिए और यह करते करते उन्हें खुद चूहों में बदल जाना होगा - मर जाना होगा एक चूहे की मौत ।

नयी पीढ़ी के समर्थ-कथाकार भीमसेन त्यागी का उपन्यास "नंगा शहर" पूंजीवादी व्यवस्थाकी भयावहता एवं नंगेपन को उसकी तमाम विसंगतियों के साथ उकेरता है । उपन्यास के तेवर व्यंग्यात्मक है । उसमें यह पूरी व्यवस्था और यह पूरी शताब्दी अपनी चरम अराजकता और कल्पनातीत बीभत्सता में नंगी हो उठी है । यहाँ दृष्टव्य है इस मशीन युग की भयावहता का एक चित्र —

"पूरी दुनिया एक विराट मशीन है, और आदमी इस मशीन का एक मामूली पुर्जा बनकर रह गया है । वह मशीन के साथ फिट होकर ही चल सकता है । इस मशीन ने बहुत-से इनसानी पुर्जों को बेकार और फालतू बना दिया है । मशीनीकरण से पूरी दुनिया का चेहरा बदल गया है । मैं जिस शहर में रहता हूँ, उसने एक ही साल में अपनी शक्ल बदल ली हैं । वह मुझे कतई "अपना" नहीं लगता । जिस मकान में मैं रहता हूँ, वह भी "अपना" नही लगता । और उसमें रहनेवाले लोग - वे अपने लग कर भी नहीं लगते । मैं फायरप्रूफ प्लास्टिक से बने जिस फ्लेट में रहता हूँ, वह इतना हल्का है कि मैं चाहूँ तो पूरे के पूरे फ्लेट को समेटकर, खुद उठाकर ले जा सकता हूँ । फ्लेट ही क्या, आज सभी चीजें हल्की हो गयी है । कपड़े इतने हल्के कि उन्हें पहनकर यह अहसास नहीं होता कि कुछ पहना है । इन कपडों को एक बार इस्तेमाल करके फेंक दिया जाता है । हर चीज को इसी तरह फेंक दिया जाता है । अब चीजों का गुण मजबूत और टिकाऊ होना नहीं, नया और जल्दी से जल्दी खत्म होने में सक्षम होना है । वे जल्दी जल्दी खत्म नही होंगी तो नयी चीजें खपेंगी कहाँ "[16]

गोया वस्तुएं मनुष्य के लिए नहीं, मनुष्य वस्तुओं के लिए है । यह चीजपरस्ती और उपयोगितावाद रही-सही मानवता के भी पुर्जे हिला देंगे ।

तात्पर्य यह कि साम्प्रत-जीवन में व्याप्त यह विसंवादिता एवं विसंगतियाँ नये हस्ताक्षरों को व्यंगात्मक सर्जना की ओर ले जा रही हैं ।

वि कृ ति याँ

विकारयुक्त कार्य अविरत प्रक्रिया (constant process) में परिवर्तित हो कर विकृतियों को जन्म देते हैं। यह बढ़ती जाती अहम्मन्यता, वस्तुवादिता, स्वार्थ-वृत्ति, भोग-विलास की लालसा से उत्पन्न कामुकता मनुष्य के मानस को निरन्तर विकृत कर रही हैं। प्रेम जैसी भावना का भी अब मनुष्य के मन या आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। वह "जीभ पर उगा हुआ कैंसर है।"[17] या महज दिमागी विलास है, बेहद गरम देश में जमायी गयी आइसक्रीम की तरह।[18] वह कहीं चुइंगम[19] की तरह सस्ता तो कहीं एक तेज़ धारवाला चाकू[20] है। पश्चिम में तो उसे sexual intercourse का ही पर्यायवायी मान लिया गया है।[21] वहाँ प्रेम करने का अर्थ ही रतिक्रीड़ा है। प्रेम अब मनुष्य की वैयक्तिक मानसिक भावना न रह कर एक सामूहिक उपभोग की वस्तु होता जा रहा है। ग्रुप सेक्स अब पश्चिम में ही नहीं, भारत के महानगरों में भी प्रवेश कर रहा है। पति इतर या पत्नी इतर गुप्त सम्बन्ध तो आदि अनादि काल से चल रहे है, किन्तु प्रत्यक्षत: एक दूसरे की नज़रों के सामने खुल्लम-खुल्ला शारीरिक प्रेम प्रदर्शन अब लव-गेम में शामिल हो गया है जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों को समान रूप से आनन्द आ रहा है।[22] "एक चूहे की मौत" में बड़े अफसरों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों में चल रहे "की-कलब" का जिक्र आता है जिसमें कलब के सभी सदस्य अपनी-अपनी पत्नियों या प्रेमिकाओं के साथ एक बहु-कक्षीय मकान में जाते हैं, लेडिज़ अलग-अलग कमरों में हो लेती है जिसकी अलग-अलग

चाबियाँ होती हैं जो एक टेबल पर एकत्रित की जाती है और अन्त में सभी पुरुष जिस के हाथ में जो चाबी आवे उसे लेकर उस कमरे में घुस जाते हैं । ऐसी रंगरेलियाँ रात रात भर चलती है ।[23]

"छाया मत छूना मन" की कंचन इस तथाकथित फारवर्ड सोसायटी के चक्कर में "ब्लू फिल्मों" में काम करते हुए अंततोगत्वा "काल गर्ल" हो जाती है ।[24]

"अन्धेरे बन्द कमरे" का नायक हरबंश अपनी विदेश यात्रा के दरमियान बीच में एक स्थान पर एक "नाइट मेर"[25] देखता है जिसमें एक निग्रो एक कमसीन लडकी पर खुल्लमखुल्ला रेप करता है ।[26]

यद्यपि आधुनिक Sexologists और जीवन शैली के अनुसार हस्तमैथुन (Master bation)[27] की गणना जातीय विकृतियों में नहीं होती[28], तथापि उसे जातीय जीवन का कोई स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता ।

"दिल एक सादा कागज" का बिल्लू इस आदत का शिकार है जिसका अधिकांश समय पाखाने में ही गुजरता है । बाहर बैठे-बैठे उसके बदन में एक ऐंठन सी उठती और वह लोटा उठाकर सीधा पाखाने भाग लेता ।[29] इसी उपन्यास के तिरछेखाँ भी बाथरूम-लवर है ।" कहते है कि आदमी को अपना काम अपने हाथ से करना चाहिए । नहीं तो अल्लाहमियाँ ने हाथ दिये क्यों है ।[30]

"एक कहानी अन्तहीन" के गोविन्दराम की पत्नी मैके गयी है, अत: वह अपनी जातीयभूख हस्तमैथुन द्वारा मिटाता है ।"[31] "अलग अलग वैतरणी" के गोपाल और कल्पू भी इसी आदत के शिकार हैं ।

पशुमैथुन (Bestiality) भी एक जातीय-विकृति है "सफेद मेमने" का ढोरों का डोक्टर भानमल जब देखता है कि नस उठ जाने से सात नम्बर की कोठरीवाली भैंस पागुर रही है तब उसके साथ मैथुन भी करता है ।[33]

स्त्री-पुरुष का मैथुनिक-सम्बन्ध (Hetero sexuality) स्वाभाविक व साधारण कहा जायेगा, किन्तु इससे विपरीत अवस्था में उसे समलैंगिक (Homo sexuality)[35] विकृति ही माना जायेगा । जब दो स्त्रियों के बीच में ऐसे सम्बन्ध होते हैं, तो उन्हें Lesbian कहा जाता है । राजकमल चौधरी कृत "मछली मरी हुई" लिस्बियन स्त्रियों पर लिखा गया उपन्यास है । "सफेद मेमने" की बन्नो और उसकी भाभी भी लिस्बियन है । यहाँ डो॰ धनराज मानधाने का यह कथन उल्लेखनीय है : "बहुत सी असभ्य एवं बर्बर जातियों में समलैंगिक व्यभिचार श्रद्धा की दृष्टि से देखा गया है । मिस्रवासी अपने पूज्य देवता "होरस" और "सेत" को समलैंगिक मैथुनकारी बताते है ।"[35]

विश्व की बहुत-सी नामांकित हस्तियाँ इस विकृति से पीड़ित मिलती हैं, जिनमें सिज़र, सुप्रसिद्ध मानवतावादी म्यूर, मूर्तिकार माईकेल एंजलो, कवि मार्लो, तथा बैकन जैसे मुख्य है । यह यौन-विकृति साहित्यिक, अभिनेता, संगीतज्ञ, बाल - सँवारने वाले, होटल के बेयरे तथा चर्च के फादर्स में विशेष रूप से पायी जाती है ।[36]

जेल, होस्टेल, अस्पताल आदि स्थानों में भी इस की बहुतायत मिलती है ।

पुरुषों में यह समलैंगिकता दो प्रकार की होती है । एक तो वह जिसमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की पूर्ति हेतु उसे अपनाया जाता है । अलग अलग वैतरणी का मास्टर जवाहरसिंह अपने शिष्य रामचेलवा को अपने साथ सुलाता है । दूसरे प्रकार की विकृति प्राय: नवाबी सभ्यता की देन है जिसे लौंडेबाजी कहा जाता है । इसमें खूबसूरत लड़कों के साथ गुदामार्गीय मैथुन (Anal coitus) किया जाता है । जब कोई किसी के द्वारा ऐसा मैथुन करवाये तो उसे buggery कहते है ।

डॉ॰ राही मासूम रज़ा के उपन्यास "आधा गाँव" और "दिल एक सादा कागज" में इस विकृति का चित्रण कई पात्रों के सन्दर्भ में हुआ हैं । नारायण गंज (दिल एक सादा कागज) की स्कूल "पालिटिकस" में इस लौंडेबाजी का भी महत्वपूर्ण रोल है । यौन-विकृतियाँ यौन कुण्ठाओं से जन्म लेती है, किन्तु कुछ विकृतियाँ जातिगत कुण्ठा एवं आर्थिक कुण्ठा से भी उत्पन्न होती हैं ।

मध्य वर्ग या निम्न मध्यवर्ग में जो प्रदर्शन वृति मिलती है, उसका मूल अर्थ-कुण्ठा में ही है । फ्रीज़, टी॰वी॰ डाईनिंग टेबुल, स्कूटर, कार, जैसी कुछ चीज "स्टेटस सिम्बोल" होती जा रही हैं । जिनके यहाँ ये चीजें प्रथम बार आती है वे घुमा-फिराकर इसकी चर्चा अवश्य कर लेते हैं ।

"दिल एक सादा कागज" के जवाहरनगर के निवासियों में यह प्रदर्शन वृतिका दिग्दर्शन लेखक ने व्यंग्यात्मक ढंग से किया है । "बीफ"

खाना फारवर्डनेस का लक्षण माना जाता है और औरतें अपने "बीफ" खाने की चर्चा गौरव के साथ करती हैं । "अन्धेरे बन्द कमरे"का मधुसूदन जब सुषमा के साथ वैभवपूर्ण होटल में जाता है तब सुषमा को प्रभावित करने के लिए वह जान बुझकर कुछ अपरिचित "आइटमों" का आर्डर देता है ।

उसी प्रकार "टूटता हुआ आदमी" डा॰ धर्मनाथ स्टेशन से गाँव जाने के लिए अनावश्यक रूप से घोडा गाडी को लेता है । अर्थ गत कुण्ठाओं से निष्पन्न विकृतियाँ व्यंग्यात्मक स्थितियों का निर्माण करती है ।

जातिगत सामाजिक व्यवस्था से भी कुण्ठाओं का जन्म होता है । विगत कई वर्षों की योजनाओं व नारों के बावजूद जातिगत सभानता बढ़ती गई है । इसने कुछ निम्न वर्गीय जातियों में कुण्ठाओं को पैदा किया है । यहाँ डा॰ पारूकान्त देसाई का यह मत ध्यातव्य है : "सदियों से इस जाति की चेतना हर ली गई है । अत: उनके मान-अपमान का कोई सवाल ही पैदा नही होता । बात-बात में उन्हें "साला कुत्ता चमार" कहा जाता है । "चमादड़ी" या "चमरौटी" शब्द ही अपमान की तिक्तता को व्यंजित करता है ।"[37]

इसी जातिगत अपमान से बचने के लिए ही नन्दसिंह पहले सिक्ख और बादमें इसाई हो जाता है । उसे "चमार" शब्द से नफरत हो गई है । इसलिए नन्दसिंह काली को अपने इसाई होने का लाभ बताते हुए कहता है कि सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि अब हम चमार नहीं रहे हैं । इस सम्बन्ध में उपन्यास के लेखक जगदीशचन्द्र की एक वक्रोक्ति(irony)

उल्लेखनीय है । नन्दसिंह जब काली से उपरोक्त बात कहता है, उसी समय गाँव का चौधरी मुन्शी कही से आ धमकता है और नन्दसिंह को गाली देते हुए कहता है -- "चमारा तूने क्या भाँग पी रखी है "[38]

उपन्यास का नायक काली शहर हो आया है । उसे भी चमारों के अपमान से दु:ख होता है । अत: उसकी उपस्थिति में हरनामसिंह जान-बुझकर मंगू को डाँटते हुए कहता है -- "कुत्ते की औलाद चूप बैठ । कुत्ता चमार अपने आपको बड़ा पंच समझता है ।"[39]

अपमान का आँक उस समय और बढ़ जाता है जब सन्तासिंह जो काली का मकान बनाने आया है, कहता है -- "मुझे नन्दसिंह ने बताया था कि काली और निक्कू मे झगड़ा हो गया है । उस समय मुझे समझ में नही आया कि तेरा नाम ही काली है । सच्ची बात पूछो तो गाँव में कुत्तो और चमारों की पहचान रखना मुश्किल है । आते-जाते रहते हैं ना ।"[40] "महा भोज" के बीसू को पहले "नक्सलाइट" कहकर पकड़वाया जाता है और अन्त में उसे मौत के घाट उतार दिया जाता है क्योंकि सहस्राधिक वर्षों से सुषुप्त इस जाति की चेतना को वह जगाना चाहता है ।

उपर्युक्त जातिगत अर्थगत कुण्ठाओं से विकृतियाँ पनपती है और यही विकृतियाँ व्यंग्य को जन्म देती है । इन कुण्ठाओं के अतिरिक्त कुछ विकृतियाँ मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों से भी उद्भवित होती है ।

"प्रेत और छाया" के पारसनाथ को जब स्वयं उसके पिता द्वारा ज्ञात होता है कि वह एक नाजायज संतान है तब उसमें "हीनता ग्रंथि" (inferionty complex) का जन्म होता है जो उसके चारित्रिक

पतन और उसमें आया हुई अन्य विकृतियों के लिए जिम्मेदार है । डा॰ धनराज मानधाने के मतानुसार "शहर में घूमता आईना" का चेतन भी इसी "हीनता ग्रंथि" का शिकार है ।[41] यह ठीक भी है, क्योंकि अभावों से पीड़ित, पिछड़ा हुआ व्यक्ति "हीनता ग्रंथि" का शिकार अवश्यमेव होगा । एक समय का मेधावी एवं प्रतिभाशाली चेतन जब देखता है कि उसकी तुलना में बुद्धि में तेज ऐसे हम्मीद, अमीचन्द, लालूबनिया, अमरनाथ आदि क्रमशः रेडियो स्टेशन पर प्रोग्राम एसिस्टेण्ट, डिप्टी कलक्टर, सिगरेटों के सबसे बडे एजन्ट तथा लेखक हो जाते है और वह लण्डूरा बना घूम रहा है तब उसके हृदय की तिक्तता एवं कटुता बढ़ जाती है -- "अमरनाथ जिसे स्कूल में लेखक के नाते कोई जानता ही न था, साहिबे किताब हो गया और वह जो अपने आपको कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और न जाने क्या क्या समझता था, यों ही लण्डूरा घूमता है ।"[42] हमारे देश में एक ऐसा वर्ग है जिसे अपने घर की प्रत्येक वस्तु के इम्पोटेड होने में तथा वैभव के प्रदर्शन में गर्व का अनुभव होता है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह प्रदर्शनवृति भी लघुता-ग्रंथि की द्योतक है । "रूकोगी नहीं राधिका " की राधिका को उसकी भाभी हर सभा - सोसायटियों में अपने साथ ले जाती है क्योंकि "फारिन रिटर्न" ननद से उसके अहं को तुष्टि मिलती है ।[43]

हमारे समाज के उच्चवर्ग में जो अंग्रेजीयत छायी हुई है, उसके मूल में यही गुलाम मनोदशा से परिचालित हीनता-बोध ही है । उत्तरी भारत में रहनेवाला प्रवीण इस बात पर गर्व करता है कि हिन्दी बोलने की अब

उसे आदत नहीं रही । उसके बच्चे भी अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य किसी भारतीय भाषा को नहीं जानते ।[44]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है यह विकृतियाँ और विसंगतियाँ ही व्यंग्योन्मुख वस्तु को उभारती हैं ।

विद्रूपता

ऊपर उल्लिखित विषमता, विसंगतता, विसंवादिता और विकृतता ही विद्रूपता को जन्म देती है जिससे हमें अपने सामाजिक राजनीतिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टता एवं सड़ांध का कुछ अहसास होता है ।

"कटा हुआ आसमान" के लेखक श्री जगदम्बाप्रसाद दीक्षित द्वारा प्रणीत उपन्यास मुरदाघर" साद्योपांत इस विद्रूपता से भरा पड़ा है । इसमें बम्बई की एक गन्दी घिनौनी सड़ांध से भरी हुई झोंपड़पट्टी की सच्ची यथार्थ तस्वीर को लेखक ने इस खूबी से उभारा है कि हमारे सभ्य समाज की परत दर परत खुलती गई है । इस विषय पर मराठी में जयंत दलवी का एक उपन्यास "चक्र" मिलता है जिस पर फिल्म भी बन चुकी है । उर्दू के प्रसिद्ध कथाकार कृष्ण चन्दर ने भी इस अपने उपन्यास और कहानियों में चित्रित किया है । के. अब्बास की एक फिल्म "शहर और सपना" भी महानगरीय जीवन से जुड़ी हुई इस विद्रूपता को उजागर करता है । झोंपड़पटी के इस कोढ़युक्त जीवन में सभ्य समाज के सारे नैतिक मूल्य धराशायी हो जाते हैं । इसमें एक-एक, दो-दो रुपये में शरीर का सौदा करनेवाली मैना, पार्वती, मरियम, बशीरन जैसी वैश्याएं हैं । बच्चे के जन्म पर यहाँ खुशी नही मातम मनाया जाता है,

क्योंकि गर्भावस्था की स्थिति उनके व्यवसाय को चौपट कर देती है । दृष्टव्य है मरियम के गर्भ रहने पर जमिला का कथन" मरियम का नसीब च खराब । नई तो रंडी लोक कू बच्चा किधर ! कभी अटका भी तो अपने आप गिर जाएगा । करवा - करवा के सब जिसम ढीला बन जाता । बच्चा अटकेगा भी तो दो महीना बस हुआ ······· अपने आप बाहर आ जाएगा । पन जिसका नसीब खराब उसकू सब हों जाएंगा ।"[45]

इसमें स्वाभिमानहीन, शारीरिक काम से कतरानेवाले दो नम्बर के व्यवसाय द्वारा रातोरात हाजी शेठ की तरह धनवान होने के स्वपन देखनेवाले पोपट जैसे जुआरी, शराबी मवाली पति है जो केवल ढाई रूपये में मेना जैसी पत्नी को खरीद कर उससे पेशा करवाते हैं । द्रष्टव्य है मैना की यह तीखी-प्रतिक्रिया "क्या बोला था तू, चाली में खोली ले के देऊँगा ····· दो बखत की रोटी ······ लुगडा ···· बिलाउज़ ···· सनीमा ले के जाऊँगा ···· ये करूँगा ··· वो करूँगा किधर गया वो सब ? गधी को गांड में घूस गया । साला झूठा ! क्या हाल कर दिया मेरा । आज इसके नीचू तो कल उसके ।"[46] मेना द्वारा पीटे जाने पर भी वह जुएँ से बाज़ नहीं आता । स्वपन में भी उसे वही दिखता है -- "मैं सच्ची बोलता मेना । आज मेरा सपना झूठा नई होगा । मैं देखा कि ···· वो अपना हाजी शेठ नई क्या ····· वो मेरेकू बुलाया । ····· उधर पोलिस का बड़ा साब भी होता । वो मेरेसे हाथ मिलाया । पीछू उधर से एक बाजू से वीस हवलदार आया और दूसरा बाजू से पचीस हवलदार आया । मैं सच्ची बोलता मेना मैं खुद गिना ····· बीस और पचीस ··· सब मेरे कू सलाम किया ····

बीस और पचीस ....दुए से मेंडी ..... दुए से पंजा आज लड़ी आनाज मैंगता ।"[47]

इस मिकदार गंदगी में मक्खियों से भिन भिनाते गन्या, राजू, मुहम्मद, गोपू जैसे बच्चें हैं । पेट की आग ने उन को कोढियों और भिखारियों की पंक्ति में खड़ा कर दिया है । इस क्रूर भयावह स्थिति ने उनके आनंद - प्राप्ति के मार्ग को भी क्रूर बना दिया है । वस्त्र के अभाव में एकान्त स्थान पर स्नान करते हुए मनुष्य पर पत्थर फेंकने में उन्हें बूढ़े अन्धे भिखारी पर पत्थर फेंकने से भी अधिक आनन्द आता है[48]

ऐसी अनेक विद्रूपतापूर्ण स्थितियाँ इस उपन्यास में पृष्ठ-पृष्ठ पर मिलती हैं ।

फिल्म इण्डस्टी की ऊपरी चकाचौंध के भीतर की विद्रूपता को पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" ने "फागुन के दिन चार" में बेनकाब किया है ।

आलोच्य काल खण्ड में डा॰ राही मासूम रज़ा का उपन्यास "दिल एक सादा कागज" इस समाज में व्याप्त विद्रूपताओं को रेखांकित करता है । "बहन" शब्द का कितना अवमूल्यन यहाँ हुआ है, उसका उदाहरण तो यह है कि इण्ड्रस्ट्री में "बहनजी" शब्द रखैल का पर्यायवाची हो गया है । लेखक नामक प्राणी की यहाँ इतनी बेइज्जती होती है कि हीरो की हर सड़ियल बात पर उसे "वन्डरफूल" "गजब" जैसे शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है । आत्मा को बेचकर ही यहाँ जिया जा सकता है ।[49]

जिस प्रकार जयशंकर प्रसाद ने अपने "कंकाल" नामक उपन्यास में उस तथा कथित भद्रवर्ग की पोल खोली थी, उसी प्रकार आलोच्य काल में

शैलेष मटियानी कृत "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" में लेखक ने बम्बई के भद्र समाज की कलई को, उसमें व्याप्त अनेक विद्रूपताओं के साथ चित्रित किया है । सेठानी नर्मदाबेन की वासना-पूर्ति सेठ नगीनदास नहीं कर सकते क्योंकि वय में वे सेठानी से काफ़ी बड़े है और विवाह से पहले अपनी जवानी के कई चेक वे काट चूके थे, अत: नर्मदाबेन के लिए उनकी जवानी के खाते में खास कुछ बचा नहीं था । पर इसका बड़ा "सोफिस्टीकेटेड" तरीका सेठानीजी ने ढूँढ निकाला है । धर्मशाला, अनाथालय, मंदिर, स्कूल आदि में व्यवस्थापक पुजारी व प्रिंसिपल की नियुक्ति सेठानी जी करती है । इस के अतिरिक्त सेठों के संरक्षण में होनेवाले कवि-सम्मेलनो से भी वह यथेच्छ "शिकार" को फँसा लेती है ।

नर्मदाबेन सेठानी के पति श्री नगीनभाई स्वयं सेठानी की वासना-पूर्ति के लिए नये-नये रास्तों को प्रशस्त करते हैं । ताकि घर की मर्यादा बनी रहे । देसाई भुवन के अन्दर ही, नर्मदाबेन ने अपने लिए एक छोटा किन्तु भव्य-पूजा गृह बनवाया था । पूजा गृह नर्मदा को गोकुल-वृन्दावन सा लगे, इस लिए नगीनभाई सेठ ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि फिल्मो में बाँसुरी बजानेवाले बाँके को बांदरा में एक फ्लेट और एक हजार मासिक वेतन पर पूजा के समय बाँसुरी बजाने के लिए रख लिया था ।" नगीनभाई सेठ का इशारा पाकर, वह नर्मदाबेन के पूजा-गृह में ही नहीं, जीवन में ऐसी बाँसुरी बजा गया कि नर्मदा का नारीत्व सफल हो गया - वह अब माँ बनने वाली थी ।[50]

तथाकथित उच्च वर्ग की महिलाएँ भी आधुनिक जीवन की लकदक और रंगीनियों से प्रेरित होकर काल-गर्ल का पेशा करने लगी हैं । अभी हाल ही में दिल्ली के "पर्शि" विस्तार की एक होटल से ऐसी कुछ सम्भ्रांत महिलाओं को पकड़ा गया था । कई बार अधिकारियों से काम निकलवाने के लिए उन्हें वैभवी होटलों में ठहराया जाता है और उन्हें हर तरह से "एण्टरटेइन" किया जाता है । "नदी फिर बह चली" में एक उच्च अधिकारी ऐसे ही होटल में ठहराया जाता है । खाने-पीने के बाद, एक रूपसुन्दरी उसके कमरे में भेजी जाती है । अधिकारी के आश्चर्य का ठिकाना नही रहता क्योंकि वह उसकी ही पत्नी थी । बाद में होटल के अधिकारियों से जवाब-तलब करने पर पता चला कि वह युवती पिछले दो-तीन महीनों से इस पेशे में हैं ।[51]

पूर्वोक्त विवेचन में "एक चूहे की मौत" के सन्दर्भ में "की-कलब" की बात को कहा गया है जो तथाकथित भद्रवर्गीय जीवन की विद्रूपता को व्यंजित करता है ।

"शहर में घूमता आईना" में भी हमारे समाज की विदूपता को अलग-अलग चित्रों में दिखाया गया है । डा॰ मक्खनलाल के शब्दों में "जिस समाज का यहाँ चित्र दिया गया है, वह यौन भुक्खडों, दम्भियों, बौनों, कायरों, मिथ्याभिमानियों, शोषकों, अनुत्तरदायियों, जनखों, पागलों, दिमागी ऐयाशों, धोखेबाजों, जादूगरों तथा अवसरवादियों आदि का है । उनमें कोई भी ऐसा नही है जो परिस्थिति को उसकी यथार्थ स्थिति में स्वीकार करके आगे बढ़े और संघर्ष का जोखिम उठावे ।"[52]

उपर्युक्त विश्लेषण विषमता, विसंवादिता, विद्रूपता प्रभृति तो व्यंग्य के मूल उद्भावक हैं। जीवन तथा समाज के नाना क्षेत्रों में कुछ परिवर्तन या पतन के कारण यह विषमता या विसंवादिता का सर्जन होता है, यहाँ ऐसे ही कतिपय आयामों की चर्चा अपेक्षित है।

:1: बढ़ती राजनीति :

राजनीति तो शुरू से बदनाम है। राजनीति राजनीति के स्थान पर हो, वहाँ तक तो ठीक है परन्तु उसका जब अन्य क्षेत्रों में प्रवेश होने लगता है तब विसंवादिता एवं विसंगतियाँ जन्म लेती हैं। वस्तुत: हमारे यहाँ एक उल्टा चक्र चला है। विश्व राजनीति में हम अनाड़ी है और अपने देश में अपने ही देश बाँधवों के सामने राजनीति खेलने में हमारा कोई सानी नहीं हैं।

"रागदरबारी" के वैद्यजी शिवपाल गंज के सर्वेसर्वा है, किन्तु वस्तुत: यह पूरा देश शिवपाल गंज है। वैद्यजी के रूपमें हमारे शासक वर्ग की छबि ही उभर कर आयी है। राजनीति की यह काली - अन्धी छाया कहाँ नही है ? गाँव, नगर, स्कूल, कालेज, धार्मिक संस्थाएं, सामाजिक संस्थाएं सभी को लीलती हुई हमारा सर्वनाश कर रही है। "सूखता हुआ तालाब", "जल टूटता हुआ", "महाभोज", "अलग-अलग वैतरणी", आधा गाँव, "प्रश्न और मरीचिका", "जहर चाँदका...", "रागदरबारी" प्रभृति अनेक उपन्यासो में राजनीति की इस बढ़ती काली छाया को हम लक्षित कर सकते हैं।

"आधा गाँव" का "गंगौली" गाँव, उत्तर पट्टी और दक्षिण पट्टी; शिया और सुन्नी; दागी हड्डीवाले और शुद्ध रूहीवाले मुसलमानों की गलाकाट राजनीति से भरा पड़ा है । "अलग अलग वैतरणी" के "करैता" गाँव में ग्रामीण राजनीति की वैतरणी का चित्र उपस्थित हुआ है । विपिन और देवनाथ जैसे शिक्षित युवक गाँव आते हैं । उनकी आँखो में सपने तैर रहे हैं । पर एक ही साल में उनका उत्साह ठंडा हो जाता है और विपिन गाज़ीपुर डिग्री कालेज में प्रोफेसरी करने चला जाता है । विपिन के ही शब्दों में " "करैता" एक जीता-जागता नरक है, जिसमें वही आता है जिस के पुण्य समाप्त हो जाते हैं ।"[53]

जमींदारी उन्मूलन से उत्पन्न रिक्तता को उधपढ-अनपढ, स्वार्थान्ध, विवेकहीन, सामान्य लोगों की फूहड़ और गलाकाट स्पर्धा से भरा गया । संस्कारहीन भ्रष्ट नवोदित धनिक वर्ग और पुराने जमींदार भी उसमें शामिल है । जमींदार के मुँह सत्ता का खून लग चुका था, अत: वह कहीं रातोरात कांग्रेसी बनकर, तो कही अपने गुर्गों के द्वारा सत्ता हथियाने की कोशिश करने लगे ।

"आज़ादी के बाद कांग्रेस में कैसे कैसे भ्रष्ट लोग आये उसका संकेत हमें "मैला आँचल" में ही मिल गया था । इसका एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस में निष्ठावान लोग या तो बहिष्कृत हुए या वे भी रंगे-सियार बन कर रह गए । "अलग अलग वैतरणी" का सुखदेवराम एक ऐसा ही पात्र है ।"[54]

"सूखता हुआ तालाब" में भी ग्रामीण राजनीति की यह कुरूपता पूर्णतया उभरकर आयी है । अपने स्वतंत्र मिज़ाज़ एवं व्यक्तित्व के कारण

देवप्रकाश सरकारी नौकरी को लात मारकर गाँव में आते हैं, परन्तु यहाँ भी उनकी दोटूक निर्भीकता उन्हें जमने नहीं देती क्योंकि गाँव भी अब शिवलाल, शामदेव, मास्टर धर्मेन्द्र, बनारसी कामरेड मोतीलाल जैसे बदमाश और हिजड़े नुमा नेताओं का अड्डा बन गया है । शंकर और जेराम जैसे कुछ अच्छे लोग हैं परन्तु उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती के समान है । पार्टीबन्दी की चरमसीमा तो तब आ जाती है जब शिवलाल की लड़की कलावती को मास्टर धर्मेन्द्र से गर्भ रहता है । मास्टर धर्मेन्द्र पट्टीदारी के हिसाब से कलावती का भाई लगता है । पुराने समय में ऐसी बात को लेकर खून-खराबा हो सकता था, परन्तु यहाँ तो इस शर्मनाक घटना का भी राजनैतिक उपयोग होता है । शिवलाल के सुपुत्र और कलावती का सगा भाई रामलाल यह दोष विरोधीदल के देवप्रकाश के पुत्र रवीन्द्र पर डालना चाहता है, परन्तु जेराम द्वारा कलई खुल जाने पर बड़ी बेशरमी से कहता है -- "आ गाँव वाले सालो की क्यों छाती फटती है ? धरमेन्दर भैया ने कुछ किया है तो मेरी ही बहन के साथ किया है न ।"[55]

ऐसे ही "रागदरबारी" "जहर चाँद का", "कथा सूर्य की नई यात्रा" आदि उपन्यासों में शिक्षा एवं साहित्य जगत में व्याप्त गुटबन्दी और राजनीति का अच्छा दिग्दर्शन हुआ है ।

:2: मोहभंग

राजनैतिक दृष्टि से यह काल मोहभंग का है क्योंकि स्वाधीनता के बाद वे तमाम बातें बदल गयी जो स्वाधीनता से पहले थी । ग्रामोद्धार, खादी-प्रचार, स्वदेशी-प्रेम, ग्रामोद्योग, राष्ट्रभाषा, समान अधिकार

आदि बातें केवल बातें ही रह गयी । शांतिमय सह अस्तित्व, पंचशील, हिन्दी-चीनी भाई-भाई की लम्बी चौडी तफसीलो के बावजूद बीस अक्तूबर, 1962 के दिन चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया । सामरिक द्रष्टि से हम सोये हुए थे । युद्ध के बाद युद्ध की तैयारियाँ होने लगी । इस स्थिति का अंकन "प्रश्न और मरीच्चिका" में भलीभाँति हुआ है ।

इधर स्वाधीनता के बाद हमारी मानसिक दासता बढ़ती गई है । गान्धी अब केवल राष्ट्रीय समारोहों मे सिमट कर रह गये । अपने सारे समाजवादी नारों के बावजूद इन वर्षों में भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी, महँगाई, कालाबाज़ार, तस्करी और शोषण बढ़ता ही गया है । नेहरु के समय में ही डॉ॰ राममनोहर लोहिया ने यह कटु सत्य आँकड़ों सहित संसद-भवन में रखकर विस्फोट किया था कि देश के कोटि-कोटि जन गरीबी रेखा के नीचे जी रहे हैं, जिनकी दैनिक आमदनी अमूमन तीन आना से अधिक नहीं है । शहीदों का स्थान अब शोहदों ने ले लिया है और देश का भविष्य ह्रासोन्मुखी तथा घोर कालिमायुक्त होता जा रहा है ।

उपर्युक्त मोहभंग की निराशा का सांगोपांग चित्र "रागदरबारी" जैसे व्यंग्यात्मक उपन्यासों में तो हुआ ही है, परन्तु इसके अतिरिक्त "सूखता हुआ तालाब", "जल टूटता हुआ", "अलग अलग वैतरणी", "धरती धन न अपना", "कालाजल", "प्रश्न और मरीच्चिका" जैसे उपन्यासो में भी कुछ आदर्श, नैतिक, मूल्यों के पक्षधर ऐसे पात्रों के पराजय द्वारा यह मोहभंग व्यंजित हुआ है ।

:3: नारी शोषण के नये कोण

आदि-अनादि काल से नारी का शोषण होता जा रहा है । हर युग ने इस शोषण के हेतु सदैव नये औजारों को तलाश किया है । Women lib. या Women Emancipation की लाख बातों के बावजूद विश्व में नारी का स्थान दूसरे दरजे का रहा है, इसीलिए सीमोन-डो-बुआ (Simone de Beauvait) ने स्त्री-विषयक जो ग्रंथ लिखा है उसीका नाम ही 'The second sex' रखा है ।

आज भी विश्व का अधिकांश नियंत्रण पुरुषों के द्वारा हो रहा है । वह शासक, अत: शोषक रहा है । विश्व को अपनी द्रष्टि से ही प्रस्तुत कर वे संपूर्ण सत्य को विभ्रमित करते रहे हैं ।[57] "नारी तुम केवल श्रद्धा हो" भले कहा जाय, परन्तु व्यवहारत: पुरुष नारी को भोग्या ही समझता रहा है । समर्पण ही नारी की नियति है ऐसा अनेक तर्क वितर्कों से ठसा दिया गया है ।[58]

"मुरदाघर" की वेश्या-समाज में तो नारीशोषण का वही परंपरागत रूप है, किन्तु हमारे तथाकथित उच्च एवं शिक्षित समाज में नारी-शोषण के कुछ नये कोण उभर कर आये हैं । मध्यवर्गीय समाज के अनेक taboos के बीच जीनेवाले हमारे शिक्षित महिला परिवार के आर्थिक बोझ को उठाने के लिए अपनी वैयक्तिक कामनाओं का गला घोंटकर "क्रौटन के पौधे" की नियति को ढोने के लिए विवश है । "पचपन खम्भे लाल दिवारें" की सुषमा, "छाया मत छूना मन" की वसुधा "टेराकोटा" की मिति परिवार की आर्थिक व्यवस्था के लिए एक अभिशाप्त जीवन जीने के लिए विवश है ।

अंग्रेजी में कहा गया है : Man wants countinuty अर्थात मनुष्य सातत्य चाहता है । मनुष्य अपनी वृद्धावस्था में अपने घर-परिवार में, पुत्र-पुत्रियों में, पोता-पोतियों में, नातियों में अपना मन रमा लेता है, परन्तु वह नारी जो परिवार के आर्थिक बोझ को ढोने के लिए अविवाहित रह गई है, अपनी उत्तरावस्था में घुटन, पीड़ा एवं संत्रास की अँधेरी अन्तहीन सुरंग से गुजरती है । उसके भीतर की स्निग्धता, कोमलता, सरसता सूखने लगती है और उसका स्थान लेते है कर्कशता कटुता, कठोरता, इर्ष्या, जलन, डाह आदि मनोविकार । "पचपन खम्भे लाल दिवारें" की सुषमा अपनी भयंकर नियति से अवगत हो चुकी है । एक बार अपनी सहेली मीनाक्षी से वह कहती है -- "पैंतालीस साल की आयु में भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूंगी, उसे सीने से लगा रखूँगी -- आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इस कालेज में आओ, तब भी तुम मुझे यहीं पाओगी । कालेज के पचपन खम्भों की तरह स्थिर, अचल ---।"[59]

"डाक बंगला" की इरा की ज़िन्दगी बिना मंज़िल के चलने वाले चिर पथिक की जिन्दगी है । वह कहती है : "मेरा पड़ाव कही भी नही है । ... रास्ते में कोई गन्दी चाय की दूकान आ गई तो लोग वहाँ भी रूककर एक प्याला पी लेते हैं ।"[60] उसी प्रकार उसकी जिन्दगी में जो आया, वह उसे सहज रूप से स्वीकारती गई । उसकी ज़िन्दगी औरों के लिए एक पड़ाव एक डाक बंगला .... मात्र बनकर रह गई ।

"काँचघर" की रत्ना तमाशे की मंच की बाई है । उसका सपना है "घरू" औरत होने का । परन्तु मुकुन्दराय के साथ विवाह करने के

उपरान्त उसकी सारी आस्था चरमरा जाती है क्योंकि मुकुन्दराय उसकी बड़ी भाभी सखूबाई से भी फँसा हुआ था और मारोतीराव से असंतुष्ठ रहनेवाली सखूबाई की सारी जिस्मी सुलगनें मुकुन्दराव के प्यार के फब्बारे को पाकर बुझ जाती थी। इस सम्बन्ध में रत्ना सोचती है -- "तुम्हारी घरू औरतो से तमाशो की औरतें कहीं भली है। ••• कई गुना शरीफ। •••••उनकी ज़िन्दगी एक साफ सुथरे ढंग से बितती है। सब कुछ काँच के गिलास-सा। जिस रंग का पानी होगा, वह उजागर। और तुम्हारे घर •••• आबरूवाले घर, गन्दे पानी की मोरी जैसे, जिस के ऊपर सफेद चमकता हुआ पत्थर रखा रहता है और भीतर सडाँध।"[6]

:4: भ्रष्टाचार :

स्वार्थान्धता, सत्तालोलुपता वस्तुपादिता, संस्कारहीनता प्रभृति कारणों से आलोच्य कालखण्ड में भ्रष्टाचार की व्याप्ति पहले के किसी भी समय से शतशः बढ़ गई है। स्वाधीनता - प्राप्ति के मुहूर्त में कुछ ऐसे तत्व सत्ता हथियाने में सफल हुए जिनके कारण भ्रष्टाचार का यह परिमाण बढ़ता गया। "प्रेम अपवित्र नदी" में लिलियन के यह पूछने पर कि "आज़ादी की लड़ाई किस तरह के लोगों ने लड़ी?" तब उपन्यास का एव पात्र विष्णुपद इसका बड़े ही मर्मान्तिक शब्दों में उत्तर देता है : "वे लोग थे -- जमींदारों के लडके, अंग्रेजी व्यवस्था व दुकानदारों के युवक - जिन के बाप कहीं अंग्रेजी शराब के व्यापारी थे, कहीं अंग्रेजी वस्त्रों के थोक-विक्रेता थे, कहीं वे अंग्रेजी चाय-बागान के मेनेजर थे, कहीं वे अंग्रेजी

दफ्तरी, न्यायालयों के अफसर और वकील थे, कहीं अंग्रेजी कालेजो के प्रोफेसर थे। इन्हीं पिताओं, बापों से विद्रोह करके उन युवकों ने आज़ादी की लड़ाई शुरू की। तभी वह दूसरा महायुद्ध आया। उसका काला बाज़ार खुला इसी बाज़ार में आज़ादी की लड़त लड़नेवालों के पुत्रों ने धन कमाना शुरू कर दिया। और जैसे ही हमें स्वतन्त्रता मिली -- उन पुरुषों ने जेलों से लौटे हुए अपने पिताओं से कहना शुरू किया - पिताजी, बाबूजी इलेकशन लड़िए - मन्त्री बनिए - इलेकशन लड़ने के लिए धन हमारे पास है।"[62]

राजनीति में कैसे कैसे भ्रष्ट लोग आ गये, उसका संकेत तो हमें "मैला आँचल" के बावनदास के कथन में ही मिल जाता है। डॉ॰ राही मासूम रज़ा के उपन्यास "दिल एक सादा कागज" में इसका बड़ा व्यंगात्मक संकेत मिलता है : "ठाकुर साब बड़े रोब-दाब के आदमी थे। लड़ाई के दिनों में न जाने कितना चन्दा देकर राय बहादुर बने थे, पर जब उन्हों ने यह देखा कि हिन्दुस्तान अब आज़ाद हुए बिना नहीं मानेगा तो ठाकुर साहब ने सन 46 में राय साहब की पदवी लौटा दी। उनके पदवी लौटाते ही लोग यह भूल गये कि सन् 42 में किस तरह उन्हों ने सरकार का साथ दिया था।"[63]

सन् 1969 के बाद तो आयाराम - गयाराम की नीति भ्रष्टता ने वह कोहराम मचाया कि राजनीति बदमाशों का अड्डा बन गयी। पिछले दशक में उसमें एक और परिमाण जुड़ा है। पहले बदमाश-गुण्डे राजनीतिज्ञों के गुर्गे हुआ करते थे, परन्तु अब स्वयं गुण्डे - बदमाश भी

इलेक्शन लड़ने लगे हैं क्योंकि सत्ता का खून उनके मुँह लग चुका है ।

भ्रष्टाचार की व्यापकता में हम राजनीतिक भ्रष्टाचार पर अधिक बल इसलिए दे रहे हैं कि समाज के दिगर क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार का उत्स यहीं है । मनोहर श्याम जोशी कृत "नेताजी कहिन" में नेताजी कहते हैं कि "भैया पैसे से काम तो पहले भी होते थे, किन्तु होते वही थे जो होने लायक होते थे, आज पैसे से कोई भी काम हो सकता है, अलबत्ता पैसा ज्यादा चाहिए ।"[64]

"डाक बंगला" (कमलेश्वर) के मि॰ बतरा का व्यवसाय ही सरकारी अधिकारियों से मिलकर लोगों का तथा अपना काम निकालना है । किसी को परमीट दिलाना, किसी को "वीसा" दिलाना, किसी का पासपोर्ट बनाना, किसी को किसी का ठेका दिलाना, किसी को "डिसपोझल" का सामान सस्ते में दिला देना यही उनका काम है और इसके लिए प्रत्येक की नब्ज़ को वह भलीभाँति पहचानते हैं । किसी भी महीने उनकी आमदनी आठ-दस हज़ार से कम नहीं और इस पर कोई आयकर उसे नहीं देना पड़ता ।[65]

"रागदरबारी" के कालिकाप्रसाद का पेशा ही सरकारी ग्रांट और कर्ज खाना था । वे सरकारी पैसे के द्वारा सरकारी पैसे के लिए जीते थे । इस पेशे में उन के तीन सहायक थे - क्षेत्रीय एम॰एल॰ए॰, खद्दर की पोशाक और उनका यह वाक्य, "अभी तो वसूली की बात ही न कीजिए । आपकी कारवाई रोकने में दिक्कत न हो, इसलिए मैंने ऊपर भी दरखास्त लगा दी है ।"[66] अपने हिसाब से वे गाँव के सब से ज्यादा आधुनिक

आदमी थे, क्योंकि उनका यह पेशा बिलकुल ही आधुनिक काल की उपज था। उन के पास पाँच बीघा ज़मीन थी जिस पर वे पचासों तरह के कर्ज, तकावियाँ व जमानते सँभाले हुए थे। "वे हर स्कीम के भीतर तकावी की दरखास्त देते, हर एक हाकिम उनकी दरखास्तों की सिफ़ारिश करता, हर बार उन्हें तकावी मिल जाती और हर बार वसूली के वक्त कारवाई रूकने की कारवाई हो जाती।"67

:5: वस्तुवादी भौतिक चिंतन :

इस बढ़ते हुए भ्रष्टाचार के मूल में है वस्तुवादी भौतिक चिंतन। आजकल हर आदमी कम से कम समय में भौतिक द्रष्टि से समृद्ध हो जाना चाहता है। पहले आदमी गाँव खेड़ा में रहता था। उसकी जरूरतें सीमित थी। जीवन सरल था। आकांक्षाएँ भी सीमित थी। अब विश्व के साथ आदमी भी सिमट रहा है। वह पूरी दुनिया को पाना चाहता है। पहले भी आदमी समृद्धि चाहता था, पर अपनी आत्मा को बेचकर नही, अपनी अस्मिता और सांस्कृतिक विरासत को खोकर नही। अब वह केवल समृद्धि चाहता है, बदले में उसे कुछ भी देना पडे। गलाकाट स्पर्धा-दौड़, कोई ठहरना नहीं चाहता। किसी के लिए ठहरने का मतलब है इस दौड़ में पिछड़ जाना। "आगामी अतीत" का डॉ॰ कमल बोझ भी इसी दौड़ में शरीक है। "मछली मरी हुई" का निर्मल पदमावत रातोंरात अरबपति एवं अनेक स्काई-स्क्रैपरों का मालिक हो जाता है। परन्तु इस बाहय - समृद्धि ने उनके भीतर को खालीपन से भर दिया है। लोगों की भीड़ बढ़ गई है, पर हर आदमी तनहा है, अकेला है,

अजनबी है । डॉ॰ विद्याशंकर राय के शब्दों में "आधुनिक मनुष्य प्रकृति, ईश्वर और समाज से कट गया है । सम्भवतः यह संसार के इतिहास में प्रथम बार हुआ है जब मनुष्य स्वयं अपने लिए समस्या बन गया है । आज का मनुष्य एक तरफ दूसरे ग्रहों पर अपना निवास बनाना चाहता है और दूसरी तरफ उसका अपने संसार से संबंध टूट रहा है ।"[68]

यह मनुष्य की स्वार्थवृत्ति एवं चीज़परस्ती का परिणाम है । "प्रश्न और मरीचिका" में एक विदेशी युवती अपनी समृद्धि के खोखलेपन को उजागर करते हुए कहती है कि इसको पाने के लिए कई बार हमें बोस के साथ सोना भी पड़ता है । "मुक्तिबोध" (जैनेन्द्रकुमार) के सहायबाबू एक उच्चवर्ग के राजनीतिज्ञ हैं । नीलिमा नामक एक अल्ट्रा माडर्न एवं अनिंद्य सुन्दरी से उनके सम्बन्ध हैं । नीलिमा का पति भी यह जानता है । जानते हुए भी उसने छूट दे रखी है क्योंकि नीलिमा के द्वारा वह सहायबाबू से लाभान्वित होना चाहता है ।

:6: जीवन मूल्यों का विघटन :

प्रत्येक युग के अपने जीवन-मूल्य होते हैं । कुछ जीवन-मूल्य शाश्वत होते है, कुछ समय - स्थिति - सापेक्ष । ऐसे मूल्य आवश्यकतानुसार परिवर्तित होते हैं । जब तक ये मूल्य जीवन की धुरी रूपी होते हैं, तब तक उसमें किसी प्रकार की अराजकता, विषमता या विसंवादिता नहीं आ पाती, किन्तु इस धुरी के गड़बड़ाते ही जीवन भी गड़बड़ा जाता है । हमारे साम्प्रत जीवन की त्रासदी यह है की पुराने सभी

जीवन-मूल्य चरमरा गये है, भहरा गये है और नये मूल्य उनके स्थानापन्न नहीं हो सके है । उपर्युक्त नीलिमावाली घटना में यदि उसका पति उन्मुक्त, स्वच्छन्द जीवन पसन्द करता हो और फलत: वह नीलिमा को भी ऐसी ही छूट देता हो तब तो उसे कोई मूल्य कहा जायेगा, परन्तु यहाँ तो भ्रष्टाचार ही जीवन मूल्य बन गया है ।

स्त्री अपनी आर्थिक विवशता में वेश्यावृति करे यह तो स्वाभाविक है, किन्तु साम्प्रतिक भौतिक दौड़ में पति स्वयं अब पत्नी को उसके लिए प्रेरित करता है । अभी कुछ समय पहले टी•वी• पर प्रदर्शित "अन्धी गलियाँ" नामक फिल्म में इसी बात को गहराई के साथ व्यंजित किया गया था ।

एक ज़माना था, जब माँ-बाप बेटी के घर का पानी तक नहीं पीते थे, अब यही बेटी-बेटे का स्थान ले रही है तो यह एक अच्छा परिमाण होगा, परन्तु इसके तहत कई आधुनिक माँ-बाप अपनी बेटी का ही शोषण करते है । "पचपन खम्भे लाल दिवारें" की सुषमा, "टेराकोटा" की मिति, "छाया मत छूना मन" की वसुधा आदि इसके उदाहरण है । बल्कि कहीं कहीं तो अब माँ-बाप चाहने लगे हैं कि बेटी शादी न करें ।

"आधा गाँव" उपन्यास में लेखक ने टूटते भहराते सामन्ती-मूल्यों को पकड़ने की कोशिश की है । जब तक जमींदारी रही तब तक परम्परागत जीवन प्रणाली रहती है । उसके टूटते ही जमींदारी के सब चोंचले भी टूटते गए। सईदा का पढ़ना और नोकरी करना अब अब्बूमियाँ को अखरता नहीं है । बेटी के पैसे वे नहीं लेते पर सईदा की माँ बेटी द्वारा खरीदें गए मातमी लिबास को पहनकर मजलिस में अब जाने लगी है ।

फुन्न मियाँ सब ही कहते है -- "इश्क्बाज़ी बघारे का जमाना है ?
अरे मियाँ ये दिन इज्ज़त आबरू से गुज़र गए गनीमत जानो ।"[69]

"रागदरबारी" और "जल टूटता हुआ" में अपने ही बाप को
लाठी से पिटनेवाले बेटे मौजूद हैं । "रागदरबारी" का रुप्पन स्वयं
अपने पिता के बारे में कहता है : "पिताजी क्या खाकर नाराज होंगे ।
उनसे कहो, मुझसे सीधे बात कर लें । उनकी शादी चौदह साल की
उमर में हुई थी । पहली अम्मा मर गयी तो सत्रह साल की उमर में
दूसरी शादी की । साल भर भी अकेले रहते नहीं बना यह तो किया
कायदे से, और बे कायदे कितना किया, सुनोगे, वह भी ..... ।"[70]

"सूखता हुआ तालाब" की राजनीतिक गुटबन्दी नें तो मानो नैतिक
मूल्यों का गला ही घोंट दिया है । इसका ज़हर इतना फैला है कि
देव प्रकाश जैसे सात्विक प्रकृति के व्यक्ति में भी एक बार अपने विरोधी
शिवलाल की बेटी को रामदोना अहिर के साथ भगा देने का विचार
आता है । पहले गाँव में किसी की भी बेटी अपनी बेटी कहलाती थी,
अब बेटी की इज्ज़त के साथ भी गुटबन्दी को जोड़ा जाता है । शिवलाल
की बेटी को जब मास्टर धर्मेन्द्र से गर्भ रहता है, जो कि उसका दूर के
रिश्ते का भाई लगता है, तब इस घटना का भी राजनीतिक उपयोग
करने का विचार स्वयं उसके भाई को आता है । इसी उपन्यास के
कॉमरेड मोतीराम अपनी ही "भयउ" (भाई की पत्नी) से शारीरिक
सम्बन्ध रखता है ।

:7: शैक्षिक-मूल्यों का विघटन :

शिक्षा से जीवन में संस्कार व व्यवस्था का संचार होता है, किन्तु हमारी शिक्षा व्यवस्था इतनी चरमरा गई है, कि रास्ते में पड़ी हुई कुतिया से अधिक महत्त्व उसका नहीं है । "रागदरबारी" "कथा-सूर्य की नयी यात्रा", "जहर चाँद का" जैसे उपन्यासों में शिक्षा जगत के अवमूल्यन का अच्छा दिग्दर्शन हुआ है । शैक्षिक मूल्यों के विघटन और उसमें व्याप्त अराजकता के सम्बन्ध में टी॰वी॰ पर "होली" नामक एक फिल्म का प्रसारण अभी हाल ही में हुआ था ।[71] कई गाँवों में ग्राम-सेविकाओं और शिक्षिकाओं का महत्त्व ग्राम-वधू से अधिक नहीं है । कालेज के प्रिंसिपल एवं अध्यापक अब गुण्डे या गुण्डे नुमा छात्रों का आधार लेने लगे हैं । "रागदरबारी" में इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध होंगे । युनिवर्सिटी के अध्यापकों में भी गुटबन्दी अपनी चरम-सीमा पर है, पढ़ना-पढ़ाना तो दूर रहा, सभी इसीमें व्यस्त है । "रागदरबारी" के रंगनाथ के शब्दों में रीसर्च के नाम पर घास खोद रहे हैं । मोहन राकेश कृत अन्तराल की एक उक्ति के अनुसार अध्यापक का व्यवसाय अब दो-मंजिला मकान बनाने का साधन होता जा रहा है ।[72] भगवतीचरण कृत "रेखा" उपन्यास में युनिवर्सिटी के राजकारण का अच्छा खाका खींचा गया है । इस उपन्यास के फिलासफी के प्रोफेसर रेवाशंकर प्रौढ़ होते हुए भी अपनी बीस वर्षीय शिष्या रेखा को फाँसते ही नहीं, उससे विवाह - सम्बन्ध भी स्थापित करते हैं ।

:8: व्यंग्यात्मक क्षण :

जिस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का लेखक मनोवैज्ञानिक क्षणों (Psychological moments) के निरूपण में अग्रसर होता है, उसी प्रकार व्यंगात्मक उपन्यासों में लेखक की प्रवृति व्यंगात्मक क्षणों को पकड़ने की और अधिक रहती है । कई बार विसदृशता (contrast) ऐसे व्यंगात्मक क्षणों को उकेरती है । यहाँ "सूखता हुआ तालाब" के सम्बन्ध में डॉ॰ पारूकान्त देसाई का यह मत ध्यातव्य होगा " अनेक विरोधी परिमाणों को आमने सामने उपस्थित करके लेखक ने मार्मिक व्यंग्य की सृष्टि की है । लीला तथा कलावती जैसी ब्राह्मण कन्याओं के आचरण के विपरीत धेनिइया जैसी चमार कन्या का गर्भ न गिराकर समाज को चुनौती देने का साहस करना, कॉमरेड मोतीलाल की समझौतापरस्त सिद्धान्तवादिता, एम॰ए॰ में पढ़नेवाले बाबू पारसनाथ का ओझा सोखा आदि में विश्वास व्यक्त करना, चमारिनों से शारीरिक सम्बन्ध रखते हुए मास्टर धर्मेन्द्र का छूआछूत सम्बन्धी दम्भ, विष्णु पुराण की कथा के उपरान्त फिल्मी गीतों को भजन के रूप में गाना, आटा चक्की की आवाज़ के साथ ही जलेश्वर के यहाँ से ओझा की डुगडुगी की आवाज़ आना, भूत-प्रेत जैसी अन्य मान्यताओं का भी राजनीति में उपयोग करना, आदि इसके उदाहरण हैं ।"[73]

"रागदरबारी" में तो पल पल में ऐसे व्यंगात्मक क्षणों को Expose किया गया है । प्रारंभ में ही ट्रक-ड्राइवर का चित्र है । ट्रक का गियर बार-बार फिसलकर न्यूटरल में आ जाता है, तब रंगनाथ कहता है --

"ड्राइवर साहब, तुम्हारा गियर तो बिल्कुल अपने देश की हकूमत जैसा है । उसे चाहे जितनी बार टॉप गियर में डालो, दो गज़ चलते ही फिसल जाता है और लौटकर अपने खाँचे में आ जाती है ।[74] ऐसे ही एक बार प्रिंसिपल की जबान पर पिकासो का नाम आ जाता है । इस क्षण को लेकर लेखक ने एक अच्छी व्यंगात्मक अवांतर-कथा को खड़ा किया है ।[75]

"मुरदाघर" की वेश्या मरियम को लड़का हुआ है । इस प्रसंग पर हिजड़ों का यह अच्छा गीत -- "गोकुल बाजे बधइया .... कन्हैया-जीने जनम लिया है ......"[76] व्यंगात्मकता की सृष्टि करता है ।

मोडर्न आर्ट या एबस्ट्रैक्ट आर्ट के नाम पर लोगों को कैसे उल्लू बनाया जाता है, उसका एक उदाहरण "दिल एक सादा कागज" में मिलता है । चित्रों की प्रदर्शनी लगी हुई है । उसमें एक पेण्टिंग दुम के बल खड़ी बकरी का है, पर उसके नीचे लिखा है - "आदम एण्ड ईव ।"[78] ऐसे तो अनेक उदाहरण आलोच्य एपन्यासों से निकाले जा सकते हैं ।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्याय के समग्रावलोकन पर निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि हमारा साम्प्रतिक जीवन सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, धार्मिक प्रभृति क्षेत्रों में व्याप्त विषमता विसंवादिता, विद्रूपता के कारण अधिक व्यंग्योन्मुख हो गया है । जीवन के तमाम क्षेत्रों में फैलती हुई राजनीति की गन्दी काली छाया, उसके साथ बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार, वस्तुवादी - भौतिकवादी स्वार्थान्ध चिन्तन-प्रणाली, नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन नारी शोषण के नये रूप प्रभृति स्थितियाँ आज के व्यंग्यकार को प्रेरित करती है ।

संदर्भ

1 "एक टूटा हुआ आदमी" : जवाहरसिंह : पृ॰ 27

2 Homage To Nehru : P. 119.

3 दष्टव्य : "राग दरबारी" : श्रीलाल शुक्ल

4 दष्टव्य : "प्रेम अपवित्र नदी" : लक्ष्मीनारायणलाल

5 दष्टव्य : "प्रश्न और मरीचिका" : भगवतीचरण वर्मा

6 तुलनीय : कबिरा खड़ा बाजार में

7 राग दरबारी : पृ॰ 175 - 176 ।

8 वही : पृ॰ 101 ।

9 दष्टव्य : रुप्पन का वक्तव्य : "मुझे तो लगता है दादा, सारे मुल्क में यह शिवपाल गंज ही फैला हुआ है ।" राग दरबारी : पृ॰ 404 ।

10 जल टूटता हुआ : पृ॰ 353-354 ।

11 राग दरबारी : लेखकीय वक्तव्य से ।

12 राग दरबारी : पृ॰ 424 ।

13 वही : पृ॰ 250 ।

14 India's Quest : Jawaharlal Nehru : P. 214.

15 साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : पृ॰ 161 ।

16 नंगा शहर : पृ॰ 31-32 ।

17 बैसाखियोंवाली इमारत : रमेश बक्षी : पृ॰ 2 ।

18 वही : पृ॰ 24 ।

19 वही : पृ॰ 32 ।

20 दिल एक सादा कागज़ : डॉ॰ राही मासूम रज़ा : पृ॰ 200 ।

21 द्रष्टव्य : An ABZ of love : Inge and Sten Hegelar

22 द्रष्टव्य " 'on a number of occasions my wife and I have facked about inter course with other partners as a prelude to our own love-making. We both round that it was an exciting exchange of ideas XXX I was extremely aroused by the sight of my wife in this situation and it was obvious that both she and my wife's friend were ready for further experiment. I soon had the other woman's briefs down placing her on my lap on the arm chair. We sat quite still and watched whilst My friend put my wife on the sofa, removed her bra and began to make passionate love.XX We had a mutually delightful few moments of frenzied love making."

The Sex - Life File : S.J. Tuffill. FRCS : P. 76.

23 "एक चूहे की मौत" : पृ॰ 99 ।

24 "छाया मत छूना मन", : पृ॰ 27 ।

25 "ब्लू फिल्म" और "नाईट मेर" में यह अंतर है कि जो दृश्य "ब्लू फिल्म" में परदे पर दिखाया जाता है, वह दृश्य "नाईट मेर" में प्रत्यक्षत: अभिनित होता है ।

26 "अन्धेरे बन्द कमरे" : हरबंस की विदेशयात्रा का प्रसंग ।

27 "Masterbation Means trying to satisfy one's sexual urges alone and unaided" : ABZ of Love : Inge and Sten Hegelar : P. 327 .

28 "हस्तमैथुन से हानि की बात बेबुनियाद हैं। उस आदत से शरीर या मन पर कोई खराब प्रभाव पड़ता है, इसकी शास्त्रीय साबिती कहीं उपलब्ध नहीं होती। xxx हस्तदोष सामान्यतया पापमय, अकुदरती, घृणित और हानिकारक है ऐसा ठसा दिया गया है, तथापि वह कृत्य तो होता ही रहता है और ऐसे ठसाये हुए अपरिपक्व विचारों के खराब परिणाम युवकों को भुगतने पड़ते है।" (गुजराती से हिन्दी रूपान्तर) : डॉ. स्टोन : दाम्पत्य रहस्य : डॉ. हरकिशनदास गांधी : पृ. 254।

(B) "The only harmful thing we find in connection with masterbation is the enormous feeling of guilt, the bad conscience which society in a foolish and entirely unjustified manner has imposed upon us"
ABZ of love : P. 236.

29 दिल एक सादा कागज : पृ. 151

30 वही : पृ. 90

31 देखिए : "वह तकिए को भींचता। अपना पैर चारपाई पर कसता। कभी चित्त होता, कभी पट। उसकी छटपटाहट जलती रेत पर पड़ी मछली जैसी थी। जब उसने हाथ का सहारा लेकर उस उबलते लावा को बाहर उलीच दिया, तभी वह सो सका था।" एक कहानी अन्तहीन: हृदयेश : पृ. 78।

32 "Bestiality : Means having sexual relations with animals, We are familiar with the theme from countless old legends from the Greeck for example about Leda, who produced the beautiful Helen with the help of a Swan"
An ABZ of Love, P. 30.

33 दष्टव्य : "एकाएक उसके खून में चिनगारियाँ उछलने लगी और कोई पुकार-पुकार के कहने लगा, "डूबो, डूबो" डॉक्टर सात नम्बर की कोठरी में घुस गया । डॉक्टर ने उसे (भैंस को) सहलाया । थूही पर थपकी दी । वह धीमे से अरड़ाकर बैठ गयी और ज़मीन पर गर्दन तानकर सुस्ताने लगी । डॉक्टर की जांघों के बीच का हिस्सा कड़ा पड़ने लगा । पिंडलियों में कंपकंपी दौड़ने लगी । उसने पैंट के बटन खोले और जल्दी से भैंस के पुट्ठों को दबाकर बैठ गया । ढीली पूँछ ऊपर उठा दी । गोबर की बू साँस में भर गयी । पर वह उसे बुरी नहीं लगी । एक गिलगिला आवरण चारों तरफ से उतर आया और वह हाँफता हुआ उसमें पूरी तरह गुम होने लगा । व्यर्थ, सब कुछ व्यर्थ । सच सिर्फ यही एक क्षण है । उसने रगों के तनाव को, ताप को, अन्दर डूबोते हुए सोचा । भैंस शांत थी । उसकी उत्तेजना गिर रही थी, शायद । डोक्टर का ज्वार ठण्डा पड़ गया । वह कृतज्ञ भाव से भैंस की पीठ थप थपा कर उठा । पैंट के बटन बन्द करता हुआ वह अपनी कोठरी की तरफ चल पडा ।"
"सफेद मैमने" मणिमधुकर : पृ. 50-51 ।

34 "People whose sexual urges are directed principally towards persons of their own sex are called homo sexual and their interest is called homo sexuality, both terms being derived from the Greek words' homo (Meaning samo) and sex " : An ABZ of love : P. 163.

35 हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास : डॉ मानधाने : पृ॰87 ।

36 वही : पृ, 87 ।

37 साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ॰ पारुकान्त देसाई : पृ॰ 99 ।

38 धरती धन न अपना : पृ॰ 131 ।

39 वही : पृ॰ 57 ।

40 वही : पृ॰ 109 ।

41 हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास : पृ॰ 200 ।

42 शहर में घूमता आईना : पृ॰ 408 ।

43 रूकोगी नहीं राधिका : पृ॰ 132 ।

44 वही : पृ॰ 104 - 105 ।

45 मुरदाघर : पृ॰ 124 ।

46 वही : पृ॰ 21 ।

47 वही : पृ॰ 27 ।

48 "भी त मजा आया आज ••••• सच्ची बोलता यार । अईसा मजा तो वो अन्धे बुड्ढे कू पत्थर मारने में भी नहीं आतता । कायकू ••••• अपुन दिन वो कुत्ते कू पानी में डुबा के मारा न•••• पर इतना मजा नई आया । : मुरदाघर : पृ॰ 61 ।

49 "लेखक ने दिल ही दिल में अपने आपको हज़ारो गालियाँ दी क्योंकि जो सीन बड़ा हीरो सुनाने लगा था वह किसी तरफ से गज़ब नहीं था । xx पर तारीफ़ तो करनी ही थी कि यह बात एक बड़ा हीरो कह रहा था । यह बात बड़े हीरों के सेक्रेट्री या उसकी कीच के माई या पिम्प ने कही होती तब भी लेखक ने यूँ ही लहककर

तारीफ की होती क्योंकि उसे एक कहानी बेचनी थी । कहानी बेचनी थी क्योंकि उसे पैसों की सख्त जरूरत थी । पैसों की उसे सख्त जरूरत थी क्योंकि उसे बनिये का तीन महीने का हिसाब चुकाना था । बनिये का हिसाब चुकाना था क्योंकि उसने उधार देने से इन्कार कर दिया था । "दिल एक सादा कागज : पृ॰ 64 ।

50 किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई : पृ॰ 20 ।

51 नदी फिर बह चली : पृ॰ 304-305 ।

52 आलोचना : क्रमांक-35 : जनवरी : पृ॰ 162 ।

53 "अलग अलग वैतरणी" : पृ॰ 663 ।

54 साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : पृ॰ 81 ।

55 सूखता हुआ तालाब : पृ॰ 99 ।

56 Emancipation on used partastaxy in - अपूर्ण

57 "Representation of the world, like the world it self, is the work of mon; they desoribe it from their own point of view, which they confuse with absolute truth." The second Sex : Simone De Beauvoil : P. 143

58 इस अर्पण में कुछ और नही
केवल उत्सर्ग छलकता है
मैं दे दूं और न फिर कुछ लूं
इतना ही सरल झलकता है ।
: कामायनी :

तुलनीय : "Anatomic destiny is thus profoundry differemt in Man and Woman and no less different is their moral and social situation. xxx from primitive times to our own, inter course has always been considered a 'service for which the male thanks the woman by giving her presents or assuring her maintenance but to serve is to give one self a master. xxx To express the fact that he has copulated with a woman, a man says he has 'possessed' her or he has 'had' her.

The second sex : Simone De Beaw Voit : P. 374_375.

59 पचपन खम्भे लाल दिवारे : उषा प्रियवंधा ÷ पृ. 109-10 ।

60 डाक बंगला : कमलेश्वर : पृ. 19 ।

61 काँचघर : रामकुमार भ्रमर : पृ. 166 ।

62 "प्रेम अपवित्र नदी : लक्ष्मीनारायणलाल : पृ. 279 ।

63 "दिल एक सादा कागज" : पृ. 114 ।

64 "नेताजी" कहिन " : पृ.

65 दष्टव्य : "डाक बंगला" : पृ. 52-53 ।

66 राग दरबारी : पृ. 192 ।

67 वही : पृ. 192 ।

68 "आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन": पृ. 11

69 "आधा गाँव" : डॉ राही मासूम रज़ा : पृ. 351 ।

70 राग दरबारी : पृ. 165 ।

71 सम्भवत : 1986 में

72 अन्तराल : पृ•

73 साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : पृ• 96-97 ।

74 राग दरबारी : पृ• 11

75 दृष्टव्य : वही : पृ• 244 से 251

76 मुरदाघर : पृ• 144

77 दृष्टव्य "बात यह है कि उसकी पेण्टिंगस समझ में आ जाती थी । उसकी पेण्ट की हुई माँ, माँ ही दिखायी देती थी । मिसाल के तौर पर हाथी या छत्री नहीं दिखाई देती थी" दिल एक सादा कागज : पृ• 52 ।

78 दृष्टव्य : जौहर ने राय दी, "कोई चूतिया आयेगा और दूम के बल खड़ी इस बकरी को पाँच सात हज़ार में खरीद ले गायेगा ।" वही : पृ• 62 ।

०००००